भगतसिंह (1931)

कौम के नाम सन्देश

'कौम के नाम सन्देश' के रूप में प्रसिद्द और 'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र ' शीर्षक के साथ मिले इस दस्तावेज के कई प्रारूप और हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हैं, यह एक संक्षिप्त रूप है। लाहौर के पीपुल्ज़ में 29 जुलाई, 1931 और इलाहाबाद के अभ्युदय में 8 मई, 1931 के अंक में इसके कुछ अंश प्रकाशित हुए थे। यह दस्तावेज अंग्रेज सरकार की एक गुप्त पुस्तक 'बंगाल में संयुक्त मोर्चा आंदोलन की प्रगति पर नोट' से प्राप्त हुआ, जिसका लेखक सी आई डी अधिकारी सी ई एस फेयरवेदर था और जो उसने 1936 में लिखी थी, । उसके अनुसार यह लेख भगतसिंह ने लिखा था और 3 अक्तूबर, 1931को श्रीमती विमला प्रभादेवी के घर से तलाशी में हासिल हुआ था। सम्भवत: 2 फरवरी, 1931 को यह दस्तावेज लिखा गया।

नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र

प्रिय साथियो

इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुज़र रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज़ कान्फ्रेन्स ने हमारे सामने शासन-विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के कामों में मदद दें। कांग्रेस के नेता इस हालत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिए तैयार दिखायी देते हैं। वे लोग आन्दोलन स्थगित करने के हक़ में फैसला करेंगे या ख़िलाफ़, यह बात हमारे लिये बहुत महत्व नहीं रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाज़िमी है। यह दूसरी बात है कि समझौता ज़ल्दी हो जाये या देरी हो।

वस्तुतः समझौता कोई हेय और निन्दा-योग्य वस्तु नहीं, जैसा कि साधारणतः हम लोग समझते हैं, बल्कि समझौता राजनैतिक संग्रामों का एक अत्यावश्यक अंग है। कोई भी कौम, जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है, ज़रूरी है कि वह प्रारम्भ में असफल हो और अपनी लम्बी ज़द्दोज़हद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौते के ज़रिये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाये, परन्तु वह अपनी लड़ाई की आख़िरी मंज़िल तक पहुँचते-पहुँचते अपनी ताक़तों को इतना दृढ़ और संगठित कर लेती है और उसका दुश्मन पर आख़िरी हमला ऐसा ज़ोरदार होता है कि शासक लोगों की ताक़तें उस वक्त तक भी यह चाहती हैं कि उसे दुश्मन के साथ कोई समझौता कर लेना पड़े। यह बात रूस के उदाहरण से भली-भाँति स्पष्ट की जा सकती है।

1905 में रूस में क्रान्ति की लहर उठी। क्रान्तिकारी नेताओं को बड़ी भारी आशाएँ थीं, लेनिन उसी समय विदेश से लौट कर आये थे, जहाँ वह पहले चले गये थे। वे सारे आन्दोलन को चला रहे थे। लोगों ने कोई दर्ज़न भर भूस्वामियों को मार डाला और कुछ मकानों को जला डाला, परन्तु वह क्रान्ति सफल न हुई। उसका इतना परिणाम अवश्य हुआ कि सरकार कुछ सुधार करने के लिये बाध्य हुई और द्यूमा (पार्लियामेन्ट) की रचना की गयी। उस समय लेनिन ने द्यूमा में जाने का समर्थन किया, मगर 1906 में उसी का उन्होंने विरोध शुरू कर दिया और 1907 में उन्होंने दूसरी द्यूमा में जाने का समर्थन किया, जिसके अधिकार बहुत कम कर दिये गये थे। इसका कारण था कि वह द्यूमा को अपने आन्दोलन का एक मंच (प्लेटफ़ार्म) बनाना चाहते थे।

इसी प्रकार 1917 के बाद जब जर्मनी के साथ रूस की सन्धि का प्रश्न चला, तो लेनिन के सिवाय बाकी सभी लोग उस सन्धि के ख़िलाफ़ थे। परन्तु लेनिन ने कहा, "शान्ति, शान्ति और फिर शान्ति - किसी भी कीमत पर हो, शान्ति। यहाँ तक कि यदि हमें रूस के कुछ प्रान्त भी जर्मनी के 'वारलार्ड' को सौंप देने पड़ें, तो भी शान्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए।" जब कुछ बोल्शेविक नेताओं ने भी उनकी इस नीति का विरोध किया, तो उन्होंने साफ़ कहा कि "इस समय बोल्शेविक सरकार को मज़बूत करना है।"

जिस बात को मैं बताना चाहता हूँ वह यह है कि समझौता भी एक ऐसा हथियार है, जिसे राजनैतिक ज़द्दोज़हद के बीच में पग-पग पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है, जिससे एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिये आराम मिल सके और वह आगे युद्ध के लिये अधिक ताक़त के साथ तैयार हो सके। परन्तु इन सारे समझौतों के बावज़ूद जिस चीज़ को हमें भूलना नहीं चाहिए, वह हमारा आदर्श है जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए। जिस लक्ष्य के लिये हम लड़ रहे हैं, उसके सम्बन्ध में हमारे विचार बिलकुल स्पष्ट और दृढ़ होने चाहिए। यदि आप सोलह आने के लिये लड़ रहे हैं और एक आना मिल जाता है, तो वह एक आना ज़ेब में डाल कर बाकी पन्द्रह आने के लिये फिर जंग छेड़ दीजिए। हिन्दुस्तान के माडरेटों की जिस बात से हमें नफ़रत है वह यही है कि उनका आदर्श कुछ नहीं है। वे एक आने के लिये ही लड़ते हैं और उन्हें मिलता कुछ भी नहीं।

भारत की वर्तमान लड़ाई ज़्यादातर मध्य वर्ग के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिसका लक्ष्य बहुत सीमित है। कांग्रेस दूकानदारों और पूँजीपतियों के ज़रिये इंग्लैण्ड पर आर्थिक दबाव डाल कर कुछ अधिकार ले लेना चाहती है। परन्तु जहाँ तक देश की करोड़ों मज़दूर और किसान जनता का ताल्लुक है, उनका उद्धार इतने से नहीं हो सकता। यदि देश की लड़ाई लड़नी हो, तो मज़दूरों, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हें लड़ाई के लिये संगठित करना होगा। नेता उन्हें आगे लाने के लिये अभी तक कुछ नहीं करते, न कर ही सकते हैं। इन किसानों को विदेशी हुकूमत के साथ-साथ भूमिपतियों और पूँजीपतियों के जुए से भी उद्धार पाना है, परन्तु कांग्रेस का उद्देश्य यह नहीं है।

इसलिये मैं कहता हूँ कि कांग्रेस के लोग सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं चाहते। सरकार पर आर्थिक दबाव डाल कर वे कुछ सुधार और लेना चाहते हैं। भारत के धनी वर्ग के लिये

कुछ रियायतें और चाहते हैं और इसलिये मैं यह भी कहता हूँ कि कांग्रेस का आन्दोलन किसी न किसी समझौते या असफलता में ख़त्म हो जायेगा। इस हालत में नौजवानों को समझ लेना चाहिए कि उनके लिये वक्त और भी सख़्त आ रहा है। उन्हें सतर्क हो जाना चाहिए कि कहीं उनकी बुद्धि चकरा न जाये या वे हताश न हो बैठें। महात्मा गाँधी की दो लड़ाइयों का अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद वर्तमान परिस्थितियों और अपने भविष्य के प्रोग्राम के सम्बन्ध में साफ़-साफ़ नीति निर्धारित करना हमारे लिये अब ज़्यादा ज़रूरी हो गया है।

इतना विचार कर चुकने के बाद मैं अपनी बात अत्यन्त सादे शब्दों में कहना चाहता हूँ। आप लोग इंकलाब-ज़िन्दाबाद (long live revolution) का नारा लगाते हैं। यह नारा हमारे लिये बहुत पवित्र है और इसका इस्तेमाल हमें बहुत ही सोच-समझ कर करना चाहिए। जब आप नारे लगाते हैं, तो मैं समझता हूँ कि आप लोग वस्तुतः जो पुकारते हैं वही करना भी चाहते हैं। असेम्बली बम केस के समय हमने क्रान्ति शब्द की यह व्याख्या की थी - क्रान्ति से हमारा अभिप्राय समाज की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान संगठन को पूरी तरह उखाड़ फेंकना है। इस उद्देश्य के लिये हम पहले सरकार की ताक़त को अपने हाथ में लेना चाहते हैं। इस समय शासन की मशीन अमीरों के हाथ में है। सामान्य जनता के हितों की रक्षा के लिये तथा अपने आदर्शों को क्रियात्मक रूप देने के लिये - अर्थात् समाज का नये सिरे से संगठन कार्ल माक्र्स के सिद्धान्तों के अनुसार करने के लिये - हम सरकार की मशीन को अपने हाथ में लेना चाहते हैं। हम इस उद्देश्य के लिये लड़ रहे हैं। परन्तु इसके लिये साधारण जनता को शिक्षित करना चाहिए।

जिन लोगों के सामने इस महान क्रान्ति का लक्ष्य है, उनके लिये नये शासन-सुधारों की कसौटी क्या होनी चाहिए? हमारे लिये निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान रखना किसी भी शासन-विधान की परख के लिये ज़रूरी है -

1. शासन की ज़िम्मेदारी कहाँ तक भारतीयों को सौंपी जाती है?
2. शासन-विधान को चलाने के लिये किस प्रकार की सरकार बनायी जाती है और उसमें हिस्सा लेने का आम जनता को कहाँ तक मौका मिलता है?
3. भविष्य में उससे क्या आशाएँ की जा सकती हैं? उस पर कहाँ तक प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं? सर्व-साधारण को वोट देने का हक़ दिया जाता है या नहीं?

भारत की पार्लियामेन्ट का क्या स्वरूप हो, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। भारत सरकार की कौंसिल आफ़ स्टेट सिर्फ अमीरों का जमघट है और लोगों को फाँसने का एक पिंजरा है, इसलिये उसे हटा कर एक ही सभा, जिसमें जनता के प्रतिनिधि हों, रखनी चाहिए। प्रान्तीय स्वराज्य का जो निश्चय गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में हुआ, उसके सम्बन्ध में मेरी राय है कि जिस प्रकार के लोगों को सारी ताकतें दी जा रही हैं, उससे तो यह 'प्रान्तीय स्वराज्य' न होकर 'प्रान्तीय जुल्म' हो जायेगा।

इन सब अवस्थाओं पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सबसे पहले हमें सारी अवस्थाओं का चित्र साफ़ तौर पर अपने सामने अंकित कर लेना चाहिए।

यद्यपि हम यह मानते हैं कि समझौते का अर्थ कभी भी आत्मसमर्पण या पराजय स्वीकार करना नहीं, किन्तु एक कदम आगे और फिर कुछ आराम है, परन्तु हमें साथ ही यह भी समझ लेना कि समझौता इससे अधिक भी और कुछ नहीं। वह अन्तिम लक्ष्य और हमारे लिये अन्तिम विश्राम का स्थान नहीं।

हमारे दल का अन्तिम लक्ष्य क्या है और उसके साधन क्या हैं - यह भी विचारणीय है। दल का नाम 'सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी' है और इसलिए इसका लक्ष्य एक सोशलिस्ट समाज की स्थापना है। कांग्रेस और इस दल के लक्ष्य में यही भेद है कि राजनैतिक क्रान्ति से शासन-शक्ति अंग्रेज़ों के हाथ से निकल हिन्दुस्तानियों के हाथों में आ जायेगी। हमारा लक्ष्य शासन-शक्ति को उन हाथों के सुपुर्द करना है, जिनका लक्ष्य समाजवाद हो। इसके लिये मज़दूरों और किसानों केा संगठित करना आवश्यक होगा, क्योंकि उन लोगों के लिये लार्ड रीडिंग या इरविन की जगह तेजबहादुर या पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास के आ जाने से कोई भारी फ़र्क न पड़ सकेगा।

पूर्ण स्वाधीनता से भी इस दल का यही अभिप्राय है। जब लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया, तो हम लोग पूरे दिल से इसे चाहते थे, परन्तु कांग्रेस के उसी अधिवेशन में महात्मा जी ने कहा कि "समझौते का दरवाज़ा अभी खुला है।" इसका अर्थ यह था कि वह पहले ही जानते थे कि उनकी लड़ाई का अन्त इसी प्रकार के किसी समझौते में होगा और वे पूरे दिल से स्वाधीनता की घोषणा न कर रहे थे। हम लोग इस बेदिली से घृणा करते हैं।

इस उद्देश्य के लिये नौजवानों को कार्यकर्ता बन कर मैदान में निकलना चाहिए, नेता बनने वाले तो पहले ही बहुत हैं। हमारे दल को नेताओं की आवश्यकता नहीं। अगर आप दुनियादार हैं, बाल-बच्चों और गृहस्थी में फँसे हैं, तो हमारे मार्ग पर मत आइए। आप हमारे उद्देश्य से सहानुभूति रखते हैं, तो और तरीकों से हमें सहायता दीजिए। सख़्त नियन्त्रण में रह सकने वाले कार्यकर्ता ही इस आन्दोलन को आगे ले जा सकते हैं। ज़रूरी नहीं कि दल इस उद्देश्य के लिये छिप कर ही काम करे। हमें युवकों के लिये स्वाध्याय-मण्डल (study circle) खोलने चाहिए। पैम्फ़लेटों और लीफ़लेटों, छोटी पुस्तकों, छोटे-छोटे पुस्तकालयों और लेक्चरों, बातचीत आदि से हमें अपने विचारों का सर्वत्र प्रचार करना चाहिए।

हमारे दल का सैनिक विभाग भी संगठित होना चाहिए। कभी-कभी उसकी बड़ी ज़रूरत पड़ जाती है। इस सम्बन्ध में मैं अपनी स्थिति बिलकुल साफ़ कर देना चाहता हूँ। मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसमें गलतफ़हमी की सम्भावना है, पर आप लोग मेरे शब्दों और वाक्यों का कोई गूढ़ अभिप्राय न गढ़ें।

यह बात प्रसिद्ध ही है कि मैं आतंकवादी (terrorist) रहा हूँ, परन्तु मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं एक क्रान्तिकारी हूँ, जिसके कुछ निश्चित विचार और निश्चित आदर्श हैं और जिसके सामने एक लम्बा कार्यक्रम है। मुझे यह दोष दिया जायेगा, जैसा कि लोग राम प्रसाद 'बिस्मिल' को भी देते थे कि फाँसी की काल-कोठरी में पड़े रहने से मेरे विचारों में भी कोई परिवर्तन आ गया है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। मेरे विचार अब भी वही हैं। मेरे हृदय में अब भी उतना ही और वैसा ही उत्साह है और वही लक्ष्य है जो जेल के बाहर

था। पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम बम से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। यह बात हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास से बहुत आसानी से मालूम हो जाती है। केवल बम फेंकना न सिर्फ़ व्यर्थ है, अपितु बहुत बार हानिकारक भी है। उसकी आवश्यकता किन्हीं ख़ास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मज़दूरों और किसानों का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग युद्ध-सामग्री को किसी ख़ास मौके के लिये केवल संग्रह करता रहे।

यदि हमारे नौजवान इसी प्रकार प्रयत्न करते जायेंगे, तब जाकर एक साल में स्वराज्य तो नहीं, किन्तु भारी कुर्बानी और त्याग की कठिन परीक्षा में से गुज़रने के बाद वे अवश्य ही विजयी होंगे।

इंकलाब-ज़िन्दाबाद!

(2 फरवरी, 1931)

Date Written: February 1931
Author: Bhagat Singh
Title: Message to Nation (Kaum ke nam sandesh)
Source: Found in various forms, this article appeared, in shortened forms in Peoples, Lahore on July 29, 1931 and Abyday, Allahabad May 8, 1931. Found attached with the secret note of a CID offices of 1936. Original title was ‘Letter to the young political workers. This is an abridged version.

भगतसिंह